आँसू

H
811.6
P 886 A

H
811.6
P886 A

Aansoo

आँसू

Jaishankar Prasad

जयशङ्कर प्रसाद

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आँसू बन कर
वह आज बरसने आयी ।

Bharati Bhandar, Allahabad

CATALOGUED

ग्रन्थ-संख्या	४
सोलहवाँ संस्करण	सं० २०२९ वि०
मूल्य	दो रुपये
प्रकाशक तथा विक्रेता	भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
मुद्रक	बी. आर. मेहता लीडर प्रेस, इलाहाबाद

आँसू के इस दूसरे संस्करण में, छन्दों का क्रम कुछ बदल दिया गया है। कुछ छन्द और भी जोड़ दिये गये, जो पहले संस्करण के बाद लिखे गये थे।

—*प्रकाशक*

श्रावणी पूर्णिमा '९०

किसी पुस्तक में उद्धरण देने के लिये प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है।

—*प्रकाशक*

Library IIAS, Shimla
H 811.6 P 886 A
00046424
46424
2-2-74
SIMLA
9112
H
811.6
P886 A

आँसू

Library [illegible]
[illegible]

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

मानस - सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें
कल- कल ध्वनि से हैं कहती
कुछ विस्मृत बीती बातें ?

आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
टकराती बिलखाती-सी
पगली - सी देती फेरी ?

क्यों व्यथित व्योम-गंगा-सी
छिटका कर दोनों छोरें
चेतना - तरङ्गिनि मेरी
लेती है मृदुल हिलोरें।

बस गयी एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र - लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

ये सब स्फुलिङ्ग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महा मिलन के।

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चल कर
करती है काम अनिल का।

वाडवज्वाला सोती थी
इस प्रणय-सिंधु के तल में
प्यासी मछली-सी आँखें
थीं विकल रूप के जल में।

बुलबुले सिन्धु के फूटे
नक्षत्र - मालिका टूटी
नभ - मुक्त - कुन्तला धरणी
दिखलाई देती लूटी।

छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से ।

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिञ्चन
बेसुध चैतन्य हमारा ।

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना ।

इस हृदय-कमल का घिरना
अलि-अलकों की उलझन में
आँसू - मरन्द का गिरना
मिलना निश्वास - पवन में।

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

सुख आहत शान्त उमंगें
बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है
रोती करुणा कोने में।

चातक की चकित पुकारें
श्यामा-ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकड़ी आँसू से गीली ।

बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ

जीवन की जटिल समस्या
है बढ़ी जटा-सी कैसी
उड़ती है धूल हृदय में
किसकी विभूति है ऐसी ?

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी।

मेरे क्रन्दन में बजती
क्या वीणा ?—जो सुनते हो
धागों से इन आँसू के
निज करुणा-पट बुनते हो।

रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण-कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जाती अनजानी ।

मैं बल खाता जाता था
मोहित बेसुध बलिहारी
अन्तर के तार खिंचे थे
तीखी थी तान हमारी ।

झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी, नीरद माला,
पा कर इस शून्य हृदय को
सब ने आ डेरा डाला ।

घिर जातीं प्रलय घटाएँ
कुटिया पर आ कर मेरी
तम-चूर्ण बरस जाता था
छा जाती अधिक अँधेरी।

बिजली - माला पहने फिर
मुस्क्याता-सा आँगन में
हाँ, कौन बरस जाता था
रस-बूँद हमारे मन में ?

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर
मेरे इस मिथ्या जग के
थे केवल जीवन - संगी
कल्याण कलित इस मग के।

कितनी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाये
स्वर्गङ्गा को धारा में
उज्ज्वल उपहार चढ़ाये।

गौरव था, नीचे आये
प्रियतम मिलने को मेरे
मैं इठला उठा, अकिञ्चन
देखे ज्यों स्वप्न सवेरे।

मधु राका मुसक्याती थी
पहले देखा जब तुमको
परिचित-से जाने कब के
तुम लगे उसी क्षण हमको।

परिचय राका जलनिधि का
जैसे होता हिमकर से
ऊपर से किरणें आतीं
मिलती हैं गले लहर से।

मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छवि को
प्रतिभा डाली भर लाता
कर देता दान सुकवि को।

निर्झर-सा झिर-झिर करता
माधवी - कुञ्ज छाया में
चेतना बही जाती थी
हो मन्त्र-मुग्ध माया में।

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे
सूखी - सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछा कर
आये तुम इस क्यारी में ।

A 7

शशि-मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल - से तुम आये ।

घन में सुन्दर बिजली-सी
बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक-सी

प्रतिमा में सजीवता - सी
बस गयी सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में
जो अलग रही लाखों में।

माना कि रूप - सीमा है
सुन्दर! तव चिर यौवन में
पर समा गये थे, मेरे
मन के निस्सीम गगन में।

लावण्य - शैल राई - सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की
सुषमा थी प्यारी - प्यारी।

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?

काली आँखों में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली ?

INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 16428
Date..................
SIMLA

तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला - पानी वेला - सी
है अञ्जन - रेखा काली।

अंकित कर क्षितिज-पटी को
तूलिका बरौनी तेरी
कितने घायल हृदयों की
बन जाती चतुर चितेरी।

कोमल कपोल पाली में
सीधी - सादी स्मित रेखा
जानेगा वही कुटिलता
जिसने भौं में बल देखा।

विद्रुम सीपी सम्पुट में
मोती के दाने कैसे
है हंस न, शुक्र यह, फिर क्यों
चुगने को मुक्ता ऐसे ?

विकसित सरसिज वन-वैभव
मधु-ऊषा के अंचल में
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में !

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय-से पुरइन के
जल-बिन्दु सदृश ठहरे कब
उन कानों में दुख किनके ?

थी किस अनङ्ग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या
तनु छवि-सर की नव लहरी ?

चंचला स्नान कर आवे
चंद्रिका पूर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी !

छलना थी, तब भी मेरा
उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था।

वह रूप रूप था केवल
या हृदय रहा भी उसमें
जड़ता की सब माया थी
चैतन्य समझ कर मुझमें।

मेरे जीवन की उलझन
बिखरीं थी उनकी अलकें
पी ली मधु मदिरा किसने
थीं बन्द हमारी पलकें ?

ज्यों-ज्यों उलझन बढ़ती थी
बस शान्ति विहँसती बैठी
उस बन्धन में सुख बँधता
करुणा रहती थी ऐंठी।

हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देती गलबाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती –
मधुपों की तान निराली।

मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते
मकरन्द - भार से दब कर
श्रवणों में स्वर जा बसते।

परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके।

थक जाती थी सुख रजनी
मुख-चन्द्र हृदय में होता
श्रम-सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भीगा होता।

सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन-कुञ्ज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसायी
सुख के सपनों से मेरे।

लहरों में प्यास भरी है
है भँवर पात्र भी खाली
मानस का सब रस पी कर
लुढ़का दी तुमने प्याली।

किञ्जल्क-जाल हैं बिखरे
उड़ता पराग है रूखा
है स्नेह - सरोज हमारा
विकसा, मानस में सूखा।

छिप गयीं कहाँ छू कर वे
मलयज की मृदुल हिलोरें
क्यों घूम गयी हैं आ कर
करुणा-कटाक्ष की कोरें।

विस्मृति है, मादकता है
मूर्च्छना भरी है मन में
कल्पना रही, सपना था
मुरली बजती निर्जन में।

हीरे-सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने
हिमशीतल प्रणय अनल बन
अब लगा विरह से जलने।

अलियों से आँख बचा कर
जब कंज संकुचित होते
धुँधली, संध्या, प्रत्याशा
हम एक-एक को रोते।

जल उठा स्नेह, दीपक-सा,
नवनीत हृदय था मेरा
अब शेष धूम-रेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा।

नीरव मुरली, कलरव चुप
अलिकुल थे बन्द नलिन में
कालिन्दी बही प्रणय की
इस तममय हृदय पुलिन में ।

कुसुमाकर रजनी के जब
पिछले पहरों में खिलता
उस मृदुल शिरीष सुमन-सा
मैं प्रात धूल में मिलता ।

व्याकुल उस मधु-सौरभ से
मलयानिल धीरे - धीरे
निश्वास छोड़ जाता है
अब विरह तरङ्गिनि तीरे ।

चुम्बन अंकित प्राची का
पीला कपोल दिखलाता
मैं कोरी आँख निरखता
पथ, प्रात समय सो जाता।

श्यामल अंचल धरणी का
भर मुक्ता आँसू कन से
छूँछा बादल बन आया
मैं प्रेम प्रभात गगन से।

विष प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में
सौन्दर्य पलक - प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में।

कामना - सिन्धु लहराता
छवि पूरनिमा थी छाई
रतनाकर बनी चमकती
मेरे शशि की परछाईं

छायानट छवि परदे में
सम्मोहन वेणु बजाता
सन्ध्या कुहुकिनि अञ्चल में
कौतुक अपना कर जाता।

मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से।

अम्बर असीम अन्तर में
चञ्चल चपला से आकर
अब इन्द्रधनुष - सी आभा
तुम छोड़ गये हो जाकर।

मकरन्द मेघ - माला - सी
वह स्मृति मदमाती आती
इस हृदय विपिन की कलिका
जिसके रस से मुसकाती।

है हृदय शिशिरकण पूरित
मधु वर्षा से शशि तेरी
मन - मन्दिर पर बरसाता
कोई मुक्ता की ढेरी !

शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा
मैं सिहर उठा करता हूँ
बरसा कर आँसू-धारा।

मधु मालतियाँ सोती हैं
कोमल उपधान सहारे
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर
गिनता अम्बर के तारे।

निष्ठुर! यह क्या छिप जाना?
मेरा भी कोई होगा
प्रत्याशा विरह-निशा की
हम होंगे औ' दुख होगा।

जब शान्त मिलन सन्ध्या को
हम हेम जाल पहनाते
काली चादर के स्तर का
खुलना न देखने पाते।

अब छुटता नहीं छुड़ाये
रँग गया हृदय है ऐसा
आँसू से धुला निखरता
यह रंग अनोखा कैसा!

कामना कला की विकसी
कमनीय मूर्ति बन तेरी
खिंचती है हृदय पटल पर
अभिलाषा बनकर मेरी।

मणि दीप लिये निज कर में
पथ दिखलाने को आये
वह पावक पुञ्ज हुआ अब
किरनों की लट बिखराये।

चढ़ गयी और भी ऊँची
रूठी करुणा की वीणा
दीनता दर्प बन बैठी
साहस से कहती पीड़ा।

यह तीव्र हृदय की मदिरा
जो भर कर—छक कर मेरी
अब लाल आँख दिखलाकर
मुझको ही तुमने फेरी।

नाविक ! इस सूने तट पर
किन लहरों में खे लाया
इस बीहड़ बेला में क्या
अब तक था कोई आया ।

उस पार कहाँ फिर जाऊँ
तम के मलीन अञ्चल में
जीवन का लोभ नहीं, वह
वेदना छद्म मय छल में ।

प्रत्यावर्तन के पथ में
पद-चिह्न न शेष रहा है।
डूबा है हृदय मरुस्थल
आँसू नद उमड़ रहा है।

अवकाश शून्य फैला है
है शक्ति न और सहारा
अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या
हो भी कुछ कूल किनारा।

तिरती थी तिमिर उदधि में
नाविक! यह मेरी तरणी
मुख चन्द्र किरण से खिंचकर
आती समीप हो धरणी।

सूखे सिकता सागर में
यह नैया मेरे मन की
आँसू की धार बहाकर
खे चला प्रेम बेगुन की।

यह पारावार तरल हो
फेनिल हो गरल उगलता
मथ डाला किस तृष्णा से
तल में बड़वानल जलता।

निश्वास मलय में मिल कर
छाया पथ छू आयेगा
अन्तिम किरणें बिखरा कर
हिमकर भी छिप जायेगा।

चमकूँगा धूप कणों में
सौरभ हो उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो
ग्रह - पथ में टकराऊँगा ।

इस यान्त्रिक जीवन में क्या
ऐसी थी कोई क्षमता
जगती थी ज्योति भरी-सी
तेरी सजीवता ममता ।

है चन्द्र हृदय में बैठा
उस शीतल किरण सहारे
सौन्दर्य सुधा बलिहारी
चुगता चकोर अंगारे ।

चलने का सम्बल लेकर
दीपक पतंग से मिलता
जलने की दीन दशा में
वह फूल सदृश हो खिलता !

इस गगन यूथिका वन में
तारे जूही से खिलते
सित शतदल के शशि तुम क्यों
उनमें जाकर हो मिलते ?

मत कहो कि यही सफलता
कलियों के लघु जीवन की
मकरंद भरी खिल जायें
तोड़ी जायें बेमन की ।

यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृन्तों में बीते
कुछ हानि तुम्हारी है क्या
चुपचाप चू पड़े जीते !

सब सुमन मनोरथ अञ्जलि
बिखरा दो इन चरणों में
कुचलो न कीट सा इनके
कुछ है मकरन्द कणों में ।

निर्मोह काल के काले
पट पर कुछ अस्फुट रेखा
सब लिखी पड़ी रह जाती
सुख-दुख मय जीवन रेखा ।

लिपटे सोते थे मन में
सुख-दुख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अँधेरी मिलती
मालती कुञ्ज में जैसे ।

अवकाश असीम सुखों से
आकाश तरंग बनाता
हँसता-सा छाया-पथ में
नक्षत्र समाज दिखाता ।

नीचे विपुला धरणी है
दुख भार वहन-सी करती
अपने खारे आँसू से
करुणा सागर को भरती ।

धरणी दुख माँग रही है
आकाश छीनता सुख को
अपने को देकर उनको
हूँ देख रहा उस मुख को।

इतना सुख जो न समाता
अन्तरिक्ष में, जल-थल में
उनकी मुट्ठी में बन्दी
था आश्वासन के छल में।

दुख क्या था उनको, मेरा
जो सुख लेकर यों भागे
सोते में चुम्बन लेकर
जब रोम तनिक-सा जागे।

लिपटे सोते थे मन में
सुख-दुख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अँधेरी मिलती
मालती कुञ्ज में जैसे ।

अवकाश असीम सुखों से
आकाश तरंग बनाता
हँसता-सा छाया-पथ में
नक्षत्र समाज दिखाता ।

नीचे विपुला धरणी है
दुख भार वहन-सी करती
अपने खारे आँसू से
करुणा सागर को भरती ।

धरणी दुख माँग रही है
आकाश छीनता सुख को
अपने को देकर उनको
हूँ देख रहा उस मुख को ।

इतना सुख जो न समाता
अन्तरिक्ष में, जल-थल में
उनकी मुट्ठी में बन्दी
था आश्वासन के छल में ।

दुख क्या था उनको, मेरा
जो सुख लेकर यों भागे
सोते में चुम्बन लेकर
जब रोम तनिक-सा जागे ।

सुख मान लिया करता था
जिसका दुख था जीवन में
जीवन में मृत्यु बसी है
जैसे बिजली हो घन में ।

उनका सुख नाच उठा है
यह दुख द्रुम-दल हिलने से
शृंगार चमकता उनका
मेरी करुणा मिलने से ।

हो उदासीन दोनों से
दुख-सुख से मेल करायें
ममता की हानि उठाकर
दो रूठे हुए मनायें ।

चढ़ जाय अनन्त गगन पर
वेदना जलद की माला
रवि तीव्र ताप न जलाये
हिमकर का हो न उजाला ।

नचती है नियति नटी-सी
कन्दुक-क्रीड़ा-सी करती
इस व्यथित विश्व आँगन में
अपना अतृप्त मन भरती ।

विभ्रम मदिरा से उठकर
आओ तम मय अन्तर में
पाओगे कुछ न, टटोलो
अपने बिन सूने घर में ।

इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे – आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रो कर अपनाओगे।

सन्ध्या की मिलन प्रतीक्षा
कह चलती कुछ मनमानी
ऊषा की रक्त निराशा
कर देती अन्त कहानी।

वेदना विकल फिर आई
मेरी चौदहों भुवन में
सुख कहीं न दिया दिखाई
विश्राम कहाँ जीवन में ?

उच्छ्‌वास और आँसू में
विश्राम थका सोता है
रोई आँखों में निद्रा
बनकर सपना होता है।

निशि, सो जावें जब उर में
ये हृदय - व्यथा आभारी
उनका उन्माद सुनहला
सहला देना सुखकारी।

तुम स्पर्श हीन अनुभव-सी
नन्दन तमाल के तल से
जग छा दो श्याम-लता-सी
तन्द्रा पल्लव विह्वल से।

सपनों की सोनजुही सब
बिखरें, ये बन कर तारा
सित-सरसिज से भर जावे
वह स्वर्गङ्गा की धारा

नीलिमा शयन पर बैठी
अपने नभ के आँगन में
विस्मृति का नील नलिन रस
बरसो अपाङ्ग के घन से ।

चिर दग्ध दुखी यह वसुधा
आलोक माँगती तब भी
तम तुहिन बरस दो कन-कन
यह पगली सोये अब-भी ।

विस्मृति समाधि पर होगी
वर्षा कल्याण जलद की
सुख सोये थका हुआ-सा
चिन्ता छुट जाय विपद की ।

चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा
सन्ध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा ।

रजनी की रोई आँखें
आलोक बिन्दु टपकातीं
तम की काली छलनाएँ
उनको चुप-चुप पी जातीं ।

सुख अपमानित करता-सा
जब व्यङ्ग हँसी हँसता है
चुपके से तब मत रो तू
यह कैसी परवशता है ?

अपने आँसू की अञ्जलि
आँखों में भर क्यों पीता
नक्षत्र पतन के क्षण में
उज्ज्वल होकर है जीता ।

वह हँसी और यह आँसू
घुलने दे—मिल जाने दे
बरसात नई होने दे
कलियों को खिल जाने दे ।

चुन-चुन ले रे कन-कन से
जगती की सजग व्यथाएँ
रह जायेंगी कहने को
जन-रञ्जन-करी कथाएँ ।

जब नील निशा अञ्चल में
हिमकर थक सो जाते हैं
अस्ताचल की घाटी में
दिनकर भी खो जाते हैं।

नक्षत्र डूब जाते हैं
स्वर्गङ्गा की धारा में
बिजली बन्दी होती जब
कादम्बिनि की कारा में।

मणिदीप विश्व-मन्दिर की
पहने किरणों की माला
तुम एक अकेली तब भी
जलती हो मेरी ज्वाला।

उत्ताल - जलधि - वेला में
अपने सिर शैल उठाये
निस्तब्ध गगन के नीचे
छाती में जलन छिपाये।

संकेत नियति का पाकर
तम से जीवन उलझाये
जब सोती गहन गुफा में
चञ्चल लट को छिटकाये।

वह ज्वालामुखी जगत की
वह विश्व - वेदना बाला
तब भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला ?

इस व्यथित विश्व पतझड़ की
तुम जलती हो मृदु होली
हे अरुणे ! सदा सुहागिनि
मानवता सिर की रोली ।

जीवन सागर में पावन
वड़वानल की ज्वाला-सी
यह सारा कलुष जलाकर
तुम जलो अनल बाला-सी ।

जगद्वन्द्वों के परिणय की
हे सुरभिमयी जयमाला
किरणों के केसर रज से
भव भर दो मेरी ज्वाला।

तेरे प्रकाश में चेतन—
संसार वेदना वाला।
मेरे समीप होता है
पाकर कुछ करुण उजाला।

उसमें धुँधली छायाएँ
परिचय अपना देती हैं
रोदन का मूल्य चुकाकर
सब कुछ अपना लेती हैं।

निर्मम जगती को तेरा
मङ्गलमय मिले उजाला
इस जलते हुए हृदय की
कल्याणी शीतल ज्वाला ।

जिसके आगे पुलकित हो
जीवन है सिसकी भरता
हाँ मृत्यु नृत्य करती है
मुसक्याती खड़ी अमरता ।

वह मेरे प्रेम विहँसते
जागो मेरे मधुवन में
फिर मधुर भावनाओं का
कलरव हो इस जीवन में ।

मेरी आहों में जागो
सुस्मित में सोने वाले
अधरों से हँसते हँसते
आँखों से रोने वाले।

इस स्वप्नमयी संसृति के
सच्चे जीवन तुम जागो
मंगल किरणों से रञ्जित
मेरे सुन्दर तम जागो।

अभिलाषा के मानस में
सरसिज-सी आंखें खोलो
मधुपों से मधु गुञ्जारो
कलरव से फिर कुछ बोलो।

आशा का फैल रहा है
यह सूना नीला अञ्चल
फिर स्वर्ण-सृष्टि-सी नीचे
उसमें करुणा हो चंचल

मधु-संसृति की पुलकावलि
जागो, अपने यौवन में
फिर से मरन्द-उद्गम हो
कोमल कुसुमों के वन में।

फिर विश्व माँगता होवे
ले नभ की खाली प्याली
तुम से कुछ मधु की बूँदें
लौटा लेने को लाली।

फिर तम प्रकाश झगड़े में
नवज्योति विजयिनी होती
हँसता यह विश्व हमारा
बरसाता मंजुल मोती ।

प्राची के अरुण मुकुर में
सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा
उस अलस उषा में देखूँ
अपनी आँखों का तारा ।

कुछ रेखाएँ हों ऐसी
जिनमें आकृति हो उलझी
तब एक झलक ! वह कितनी
मधुमय रचना हो सुलझी ।

जिसमें इतराई फिरती
नारी - निसर्ग - सुन्दरता
छलकी पड़ती हो जिसमें
शिशु की उर्मिल निर्मलता ।

आँखों का निधि वह मुख हो
अवगुण्ठन नील गगन-सा
यह शिथिल हृदय ही मेरा
खुल जावे स्वयं मगन-सा ।

मेरी मानस - पूजा का
पावन प्रतीक अविचल हो
झरता अनन्त यौवन मधु
अम्लान स्वर्ण-शतदल हो ।

कल्पना अखिल जीवन की
किरनों से दृग तारा की
अभिषेक करे प्रतिनिधि बन
आलोकमयी धारा की।

वेदना मधुर हो जावे
मेरी निर्दय तन्मयता
मिल जावे आज हृदय को
पाऊँ मैं भी सहृदयता।

मेरी अनामिका सङ्गिनि!
सुन्दर कठोर कोमलते!
हम दोनों रहें सखा ही
जीवन पथ चलते-चलते।

ताराओं की वे रातें
कितने दिन—कितनी घड़ियाँ
विस्मृति में बीत गईं वे
निर्मोह काल की कड़ियाँ ।

उद्वेलित तरल तरंगें
मन की न लौट जावेंगी
हाँ उस अनन्त कोने को
वे सच नहला आवेंगी ।

जल भर लाते हैं जिसको
छूकर नयनों के कोने
उस शीतलता के प्यासे
दीनता दया के दोने।

फेनिल उच्छ्वास हृदय के
उठते फिर मधुमाया में
सोते सुकुमार सदा जो
पलकों की सुख-छाया में।

आँसू वर्षा से सिंचकर
दोनों ही कूल हरा हो
उस शरद प्रसन्न नदी में
जीवन-द्रव अमल भरा हो।

जैसे सरिता के तट पर
जो जहाँ खड़ा रहता है
विधु का आलोक तरल पथ
सम्मुख देखा करता है।

जागरण तुम्हारा त्यों ही
देकर अपनी उज्वलता
इन छोटी बूँदों से भी
हर लेता सब पंकिलता।

इस छोटी-सी सीपी में
रत्नाकर खेल रहा हो
करुणा की इन बूँदों में
आनन्द उँडेल रहा हो।

मेरे जीवन का जलनिधि
बन अंधकार उर्मिल हो
आकाश-दीप-सा तब वह
तेरा प्रकाश झिलमिल हो ।

हैं पड़ी हुई मुँह ढँक कर
मन की जितनी पीड़ाएँ
वे हँसने लगें सुमन-सी
करती कोमल क्रीड़ाएँ ।

तेरा आलिंगन कोमल
मृदु अमर-बेलि-सा फैले
धमनी के इस बंधन में
जीवन ही न हो अकेले ।

आँसू

हे जन्म-जन्म के जीवन
साथी संसृति के दुख में
पावन प्रभात हो जावे
जागो आलस के सुख में।

जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे।

सपनों की सुख छाया में
जब तन्द्रालस संसृति है
तुम कौन सजग हो आई
मेरे मन में विस्मृति है ।

तुम ! अरे, वही हाँ तुम हो
मेरी चिर-जीवन-संगिनि
दुख वाले दग्ध हृदय को
वेदने ! अश्रुमयि रङ्गिनि !

जब तुम्हें भूल जाता हूँ
कुड्मल किसलय के छल में
तब कूक हूक-सी बन तुम
आ जातीं रंगस्थल में।

बतला दो अरे न हिचको
क्या देखा शून्य गगन में
कितना पथ हो चल आई
रजनी के मृदु निर्जन में?

सुख-तृप्त-हृदय कोने को
ढकती तम-श्यामल छाया
मधु स्वप्निल ताराओं की
जब चलती अभिनय माया।

देखा तुमने तब रुक कर
मानस कुमुदों का रोना
शशि किरणों का हँस-हँसकर
मोती मकरन्द पिराना।

देखा बौने जलनिधि का
शशि छूने को ललचाना
वह हाहाकार मचाना
फिर उठ-उठ कर गिर जाना।

मुँह सिये, झेलतीं अपनी
अभिशाप ताप ज्वालाएँ
देखीं अतीत के युग से
चिर - मौन शैल - मालाएँ।

जिनपर न वनस्पति कोई
श्यामल उगने पाती है
जो जनपद-परस-तिरस्कृत
अभिशप्त कही जाती हैं।

कलियों को उन्मुख देखा
सुनते वह कपट - कहानी
फिर देखा उड़ जाते भी
मधुकर को कर मनमानी।

फिर उन निराश नयनों की
जिनके आँसू सूखे हैं
उस प्रलय दशा को देखा
जो चिर-वंचित भूखे हैं।

सूखी सरिता की शय्या
वसुधा की करुण कहानी
कूलों में लीन न देखी
क्या तुमने मेरी रानी ?

सूनी कुटिया कोने में
रजनी भर जलते जाना
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा है फिर बुझ जाना ।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 46424
Date 2.2.74
SIMLA

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन सा
आँसू इस विश्व-सदन में ।

4/10/06

I. I. A. S. LIBRARY

Acc. No.

This book was issued from the library on the date last stamped. It is due back within one month of its date of issue, if not recalled earlier.

२१/९/७६			

Library IIAS, Shimla

H 811.6 P 886 A

00046424